Date: 17-08-18

दैनिक भास्कर

मनरेगा मजदूरी तय करने के तरीके बदलने होंगे

रनेन बनर्जी पार्टनर एवं लीडर,पीडब्लूसी इंडिया

मनरेगा के तहत न्यूनतम मजदूरी में हुए ताजा संशोधन पर गौर करें तो एक बार फिर इसमें मामूली बढ़ोतरी ही हुई है। एक अप्रैल 2018 से लागू हुए नोटिफिकेशन के मुताबिक देश के 29 में से 15 राज्यों में यह पांच रुपए से भी कम बढ़ी है। मप्र, गुजरात, महाराष्ट्र में महज 2-2 रुपए बढ़ी है। इसका आंकड़ा क्रमश: 172 रुपए, 192 रुपए और 201 रुपए तक ही पहुंच पाया है। वहीं बिहार, झारखंड, राजस्थान और उत्तर प्रदेश ऐसे राज्य हैं जहां इसमें कोई इजाफा नहीं हुआ है। बिहार, झारखंड में यह 168 रुपए है। राजस्थान में 192 रुपए और यूपी में 175 रुपए पर स्थिर रही है। इसके बाद मनरेगा के तहत न्यूनतम मजदूरी तय करने की पद्धति में बदलाव करने की जरूरत बढ़ गई है। इस बारे में दो मुद्दे काफी अहम हैं। पहला, राज्यों के बीच न्यूनतम कृषि मजदूरी और मनरेगा मजदूरी में अंतर बहुत ज्यादा है। पिछले कुछ साल में यह अंतर तेजी से बढ़ा है। 2017 में कृषि मजदूरी की औसत दर 263 रुपए थी, जबकि मनरेगा मजदूरी की दर 198 रु. थी।

पश्चिम बंगाल और तमिलनाडु जैसे राज्यों में तो यह अंतर 100 रुपए से भी अधिक है। 2009 में राज्यों की न्यूनतम कृषि मजदूरी की दर को मनरेगा के अनुरूप किया गया था। लेकिन राज्यों के बीच मजदूरी तय करने में एकरूपता नहीं होने से समय के साथ अंतर फिर बढ़ गया। मनरेगा की मजदूरी 'ग्रामीण मजदूरों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक' (सीपीआई-एएल) से जुड़ी हुई है। जबकि राज्य न्यूनतम कृषि मजदूरी तय करने के लिए विभिन्न सूचकांक इस्तेमाल करते हैं। मसलन, बिहार ने इसे सीपीआई-ऑल इंडिया से जोड़ रखा है। खेती से जुड़ी विभिन्न गतिविधियों से भी मजदूरी में अंतर आ जाता है। इस कारण भी राज्यों के द्वारा मजदूरी तय करने के लिए एक समान तरीका अपनाने की जरूरत नजर आती है ताकि न्यूनतम कृषि मजदूरी और मनरेगा मजदूरी एक-समान हो पाएं।

दूसरा अहम मुद्दा मनरेगा मजदूरी की महंगाई दर का सीपीआई-एएल से जुड़ा होना है। इससे भी मनरेगा की मजदूरी में साल-दर-साल कम बढ़ोतरी हो रही है। सीपीआई-एएल एनएसएसओ सर्वे-1983 के खपत बास्केट पर आधारित है। यह इंडेक्स ग्रामीण परिवारों से संबंधित है जिनकी ज्यादातर आय कृषि से जुड़ी गतिविधियों से होती है। यह मनरेगा तय करने के लिए उचित आधार नहीं हो सकता क्योंकि मनरेगा के तहत सरकार वाटर हार्वेस्टिंग, सिंचाई, सड़क निर्माण आदि जैसे काम कराती है। सीपीआई-एएल के तहत खपत बास्केट का तरीका भी पुराना पड़ चुका है क्योंकि इसमें कई साल से खर्च के तरीकों में आए बदलाव को शामिल नहीं किया गया है। दूसरी तरफ, सीपीआई-रूरल इंडेक्स के तहत खपत बास्केट 2004-05 के आंकड़ों पर आधारित है। इसे सभी ग्रामीण परिवारों पर लागू किया जा सकता है। इसे अपनाने से ग्रामीण क्षेत्रों में महंगाई के बेहतर आंकड़े मिल सकते हैं। लेकिन पुराने तरीके की वजह से पिछले तीन साल के दौरान

सीपीआई-एएल की महंगाई दर आंशिक रूप से सीपीआई-रूरल की महंगाई दर से कम रही है। मनरेगा मजदूरी में हुई मामूली बढ़ोतरी की एक वजह यह भी है। मनरेगा का उद्देश्य ग्रामीणों को उनके ही गांव में रोजगार से जोड़कर क्षेत्र से पलायन रोकना है। लेकिन पिछले कुछ साल में मनरेगा के तहत न्यूनतम मजदूरी में मामूली बढ़ोतरी होने से इस कानून का मुख्य उद्देश्य हासिल नहीं हो पाया है। यह सुप्रीम कोर्ट के उस फैसले के खिलाफ है जिसमें किसी श्रमिक को न्यूनतम मजदूरी से कम भुगतान को बंधुआ मजदूरी जैसा बताया गया है।

Date: 17-08-18

राजनीति में इंसानियत के हिमायती अनूठे राजनेता

शशि थरूर, (शशि थरूर विदेश मामलों की संसदीय समिति के चैयरमैन)

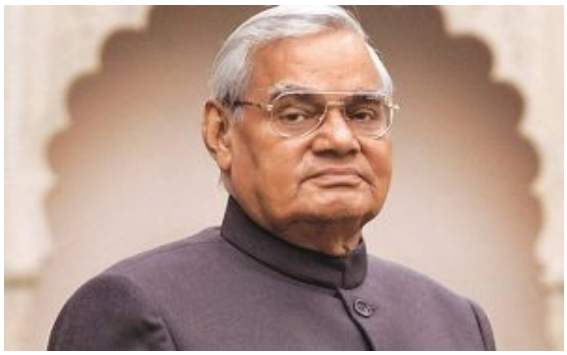

सबसे लंबी आयु तक जीये देश के पूर्व प्रधानमंत्री 93 वर्ष की उम्र में हमसे विदा हो गए। लेकिन, उनके खराब स्वास्थ्य ने देश को उनकी संत जैसी सलाहों से करीब एक दशक तक वंचित रखा और अब तो वे रहे ही नहीं। जब से वे राष्ट्रीय मंच से ओझल हुए हैं वैसी मधुर वक्तृत्व कला, प्रखर हाजिरजवाबी और हंसती हुईं आंखें दिखाई नहीं दी है। कई लोग उनके प्रधानमंत्रित्व, पहले जनसंघ व बाद में भाजपा को दिए उनके राजनीतिक नेतृत्व, दोनों को उन्होंने कैसे राष्ट्रीय स्तर पर पूरी ऊर्जा के साथ ऊपर उठाया, इसकी बात करेंगे। किंतु । अटल बिहारी वाजपेयी को जो चीज अलग करती है वह है इंसानियत।

एक ऐसे वक्त जब भाजपा निष्ठुरता से पूरी तरह केंद्रित होकर सत्ता हासिल करने और दूसरों को दरकिनार कर सत्ता को आजमाने की पर्यायवाची हो गई है, वाजपेयी अधिक उदार व सौन्य युग की याद दिलाते हैं। उनके लिए 'कांग्रेस मुक्त भारत' जैसी कोई बात नहीं थी। जब वे 1977 में देश की पहली गैर-कांग्रेस सरकार में विदेश मंत्री बने तो उन्होंने पाया कि विदेश मंत्री के कक्ष से नेहरू का चित्र हटा दिया गया है। वे आजीवन कांग्रेस के आलोचक रहे पर उन्होंने नेहरू के चित्र को निर्धारित जगह पर वापस लगाने का आदेश दिया। यह अटल बिहारी वाजपेयी के व्यक्तित्व का मूल था- उनका उदार हृदय होना। वे उन लोगों को भी गले लगा लेते थे, जिनसे वे असहमत होते। प्रधानमंत्री के रूप में उन्होंने जिन राष्ट्रीय राजमार्गों की कल्पना की, उनका निर्माण कराया, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना ने ग्रामीण क्षेत्र की कनेक्टिविटी बढ़ाने में जैसा योगदान दिया, वह हमेशा याद किया जाएगा। लेकिन, मैं उन्हें पाकिस्तान के साथ शांति स्थापित करने के उनके असाधारण और अंत में नाकाम रहे प्रयासों के लिए याद करूंगा। मोरारजी देसाई की सरकार में अनपेक्षित रूप से विदेश मंत्री बनाए गए वाजपेयी ने पूरी गरिमा और संकल्प के साथ नेहरू युग की विदेश नीति को अमल में लाकर कई लोगों को चकित कर दिया था। इसी तरह फरवरी 1999 में लाहौर बस यात्रा की उनकी नाटकीय पहल और मिनार-ए-पाकिस्तान पर अपने पूर्वग्रह छोड़कर दिए उनके आंदोलित करने वाले भाषण ने कई लोगों को चौंका दिया। यह एक बहुत साहसी मुद्रा थी, जिसका जोखिम हिंदुत्व की बेदाग पहचान वाला नेता ही ले सकता। लेकिन, 'लाहौर की वह भावना'

जल्दी ही करगिल की बर्फ में दफन हो गई, क्योंकि पाकिस्तानी फौज ने शांतिदूत को धोखा दे दिया। इससे विचलित हुए बगैर वाजपेयी ने नए सैन्य शासक जनरल मुशर्रफ को 2001 में आगरा में चर्चा के लिए आमंत्रित किया। लेकिन, संसद पर हुए हमले के बाद जब वह प्रयास भी नाकाम रहा तो भी 2003-04 में उन्होंने अंतिम राजनयिक प्रयास किया

जब वाजपेयी को पाकिस्तान के साथ शांति स्थापित करने के लिए बार-बार के प्रयासों के लिए चुनौती दी गई तो उन्होंने स्मरणीय शब्दों में प्रतिक्रिया देते हुए कहा कि आप इतिहास तो बदल सकते हैं पर भूगोल नहीं। पाकिस्तान हमारा पड़ोसी है, आपको उसके साथ जीना होगा। इसी तरह उन्होंने कश्मीरी अलगाववादियों से भी संवाद शुरू किया था। जब कहा गया कि भारतीय संविधान के तहत वे किसी सुलह पर बातचीत नहीं करेंगे तो उन्होंने सुझाव दिया कि बातचीत 'इंसानियत' के तहत शुरू हो सकती है।

इंसानियत उनकी कविता, उनके व्यक्तिगत उद्‌गारों और गाहेबगाहे उनके भाषणों में दिखती थी, जो अपने आप में मास्टरपीस होते थे, जिन्हें बड़ी खूबी से बयान किया जाता था। यह मेरा दुर्भाग्य है कि उनके कॅरिअर के आखिर में उनसे मेरा परिचय हुआ, जब मैं संयुक्त राष्ट्र का उप महासचिव था तो संयुक्त राष्ट्र महासभा की सालाना बैठक में उनके भाषण के पहले मेरे प्रधानमंत्री से मेरी वार्षिक मुलाकात होती थी। मैंने उन सालाना संक्षिप्त मुलाकातों का पूरा आनंद लिया। 2006 में संयुक्त राष्ट्र में महासचिव बनने के लिए जब मैंने फोन करके उनसे शुभकामनाएं मांगी तो उन्होंने जो आशीर्वचन व्यक्त किए उन्हें मैं हमेशा दिल में संजोकर रखूंगा।

अपने योगदान के कारण वाजपेयी भारत को बेहतर स्थिति में छोड़कर जा रहे हैं। उनके अनूठे सर्वशिक्षा अभियान ने प्राथमिक शिक्षा में महत्वपूर्ण निवेश किया, आर्थिक सुधारों में उनके नेतृत्व, अराजक से गठबंधन का कुशल प्रबंधन ने प्रधानमंत्री के रूप में उनके छह साल के कार्यकाल को स्मरणीय बना दिया। पर इन विशिष्ट उपलब्धियों से अधिक महत्व इस बात का है कि वाजपेयी ने उन्हें कैसे हासिल किया। उनका सौम्य, धैर्यशील रवैया, उनकी शाश्वत सौजन्यता, व्यवहार की गरिमा और सबको अपने दायरे में लेने वाली उनकी मानवीयता ने एक महान विरासत पीछे छोड़ी है। यह ऐसी विरासत है जिसे ऐसे युग में और भी अधिक याद करने, सराहने की जरूरत है, जिसमें ऐसे गुण हमारे सार्वजनिक जीवन से लुप्त होते जा रहे हैं।

Date: 17-08-18

रुपए का लगातार गिरता मूल्य और दुनिया के हालात

संपादकीय

स्वतंत्र भारत की 71वीं सालगिरह पर डॉलर के मुकाबले रुपए का मूल्य 70.15 तक पहुंच गया। इसका अर्थ यही है कि अमेरिका जैसी महाशक्ति आर्थिक मामले में अपना साम्राज्य कायम रखना चाहती है और असंतुलित दुनिया का एक तनावपूर्ण ढांचा निर्मित रखना चाहती है। पूर्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के कार्यकाल में रुपए के अवमूल्यन पर व्यंग्य करने वाले मौजूदा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को विपक्ष का यह व्यंग्य सुनना पड़ रहा है कि जो काम 70 सालों में नहीं हुआ वह इन्होंने कर दिया। भारत जब स्वतंत्र हुआ था तब एक डॉलर बराबर एक रुपया ही था। आज भले हम दुनिया की

छठी अर्थव्यवस्था बन गए हैं लेकिन, हमारी प्रति व्यक्ति आय, मानव विकास सूचकांक और अर्थव्यवस्था के दूसरे तमाम ब्योरे गर्व करने लायक नहीं हैं। ऐसे में हम सिर्फ यह कहकर नहीं बच सकते कि अमेरिकी व्यापार युद्ध के कारण तुर्की सर्वाधिक दिक्कत में है। तुर्की की मुद्रा लीरा डॉलर के मुकाबले 45 प्रतिशत गिर गई है और वहां महंगाई 16 फीसदी पर पहुंच गई है।

अमेरिका के केंद्रीय बैंक फेडरल रिजर्व ने निवेशकों से कहा है कि वे तुर्की समेत दुनिया के दूसरे बाजारों से धन खींचें और डॉलर को मजबूत करें। इसका प्रभाव यह हो रहा है कि विश्व के कई प्रगतिशील मुद्रा बाजार 8 फीसदी तक डुबकी लगा गए हैं। भारत में यह गिरावट उससे भी ज्यादा यानी 8.5 फीसदी तक चली गई है। भले ही हमारे पूर्व वित्त मंत्री अरुण जेटली यह हौसला दिलाएं कि तुर्की के हालात पर नजर रखी जा रही है। वजह साफ है कि डॉलर के दाम बढ़ने के बाद रिजर्व बैंक उसे खरीदने के लिए विदेशी मुद्रा का इस्तेमाल करता है और उससे उसमें गिरावट आती है। 3 अगस्त को हमारा विदेशी मुद्रा भंडार 1.49 अरब डॉलर घटकर 402.7 अरब डॉलर तक आ गया था, जो सात माह का सबसे निचला स्तर है। इस पतन की एक वजह पूरी दुनिया में चौबीसों घंटे चलने वाला एनडीएफ (नाॅन डिलीवरेबल फॉरवर्ड) बाजार भी है। सिंगापुर, दुबई, हांगकांग, लंदन, अमेरिका और यूरोप के कुछ हिस्सों में सक्रिय इस बाजार में मुद्रा का वायदा कारोबार होता है। ऐसे में जरूरत इस बात की है कि भारत अपना अतिरिक्त आत्मविश्वास छोड़कर जहां जरूरी हो वहां सार्थक हस्तक्षेप करे।

Date: 17-08-18

दैनिक जागरण

विराट व्यक्तित्व की विदाई

संपादकीय

हाल के भारतीय इतिहास की सबसे लोकप्रिय और सर्व स्वीकार्य राजनीतिक शख्सियत अटल बिहारी वाजपेयी का अवसान एक ऐसे राजनेता की विदाई है जो जननायक के साथ-साथ महानायक की छवि से लैस हो गए थे। उनके निधन के साथ ही नेताओं की वह पीढ़ी ओझल होती दिखती है जिसने खुद को नेता से राजनेता यानी स्टेट्समैन में तब्दील कर लिया था। बीमारी के कारण वह एक अर्से से राजनीतिक तौर निष्क्रिय थे, लेकिन वह अपनी उपस्थिति का आभास कराते थे। इसका कारण यही था कि वह राजनीतिक जीवन में सक्रिय लोगों के लिए एक प्रेरक उदाहरण बन गए थे। यह उनके विराट व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि उनकी मिसाल उनके विरोधी भी देते थे।

आज जब यह अकल्पनीय है कि दूसरे दलों के लोग किसी अन्य दल के शिखर पुरुष का उल्लेख उसकी प्रशंसा करते हुए करें तब अटल बिहारी वाजपेयी का जाना एक राष्ट्रीय क्षति है। इस क्षति का अहसास इसलिए कहीं गहरा है, क्योंकि

उनके जैसे समावेशी राजनीति के शिल्पकार दुर्लभ हैं। वह कितने विरले थे, यह इससे प्रकट होता है कि आज उनके जैसा भरोसा पैदा करने वाला नेता दूर-दूर तक नहीं नजर आता। उनके यश की कीर्ति जिस तरह फैली उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है। उनकी लोकप्रियता दलगत सीमाओं से परे पहुंच गई थी तो केवल इसलिए नहीं कि वह भाजपा के कद्दावर नेता थे और उनकी भाषण शैली सभी को मंत्रमुग्ध करती थी। इसके साथ-साथ वह उस राजनीति के वाहक भी थे जिसके कुछ मूल्य और मर्यादाएं थीं।

भाजपा के शीर्ष नेता के तौर पर वह स्पष्ट तौर पर यह कहते थे कि हम एक राजनीतिक दल हैं और सत्ता में आना चाहते हैं, लेकिन उन्होंने यह भी साबित किया कि सत्ता ही सब कुछ नहीं है। आखिर कौन भूल सकता है उस क्षण को जब उनकी सरकार एक वोट से गिरी थी? यह इसीलिए गिरी थी, क्योंकि तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष ने विरोधी दल के एक ऐसे सांसद को भी मतदान में भाग लेने की अनुमति दे दी थी जो मुख्यमंत्री पद की शपथ ले चुके थे। अटल बिहारी वाजपेयी ने इस फैसले का प्रतिवाद नहीं किया। इस प्रसंग के पहले उनकी 13 दिन की सरकार के विश्वास मत के समय उनका संबोधन कालजयी इसीलिए बना कि उन्होंने सत्ता के लिए किसी भी सीमा तक जाने वाली राजनीति की राह पकड़ने से इन्कार किया।

आम के साथ-साथ खास लोग उन्हें सुनने के लिए इसलिए लालायित नहीं रहते थे कि वह उस दौरान हास-परिहास भी करते थे। वह अपने संबोधन के जरिये लोगों के मर्म को भी छूते थे और नीतियों और नजरिये को नई धार भी देते थे। जब यह स्थापित मान्यता थी कि कश्मीर समस्या का समाधान तो संविधान के दायरे में ही संभव है तब उन्होंने कश्मीरियत, जम्हूरियत और इंसानियत का मंत्र दिया। अटल जी भले ही स्थापित परंपराओं को पुष्ट करने वाले राजनेता के तौर पर जाने जाते हों, लेकिन उन्होंने नए प्रतिमान गढ़े और नई परंपराओं की आधारशिला रखी।

उन्होंने न केवल गठबंधन राजनीति को बल और संबल प्रदान किया, बल्कि विदेश नीति को भी नया आयाम दिया। तमाम कटुता भुलाकर उन्होंने एक राजनेता की तरह व्यवहार किया और कारगिल के खलनायक परवेज मुशर्रफ को वार्ता की मेज पर आने का अवसर दिया। मुशर्रफ के बुलावे पर वह पाकिस्तान गए तो वहां से अमन का एक टुकड़ा लेकर ही लौटे। कमजोर समझी जाने वाली गठबंधन सरकारों का नेतृत्व करने के बावजूद उन्होंने देश को परमाणु हथियार संपन्न बनाया और पूरी दुनिया को दृढ़ इच्छाशक्ति और दूरदर्शिता से परिचित कराया। वह ऐसा इसीलिए कर सके, क्योंकि एक सांसद के तौर पर वह विदेश नीति के ऐसे विशेषज्ञ के रूप में जाने जाते थे जो भरी संसद में नेहरू जी से भी असहमति प्रकट करने में आगे रहते थे। यह तब था जब वह नेहरू को एक आदर्श नेता के तौर पर देखते थे।

उन्होंने यह दिखाया कि राजनीति में मतभेद किस तरह मनभेद तक नहीं जाने चाहिए। उनका एक अन्य बड़ा योगदान सुशासन को सार्थकता प्रदान करना रहा, जिसके लिए राष्ट्र उनका ऋणी रहेगा। उनका व्यक्तित्व महज एक लोकप्रिय राजनेता का ही नहीं, कवि हृदय वाले व्यक्ति का भी था। वह हिंदी प्रेमी ही नहीं हिंदी सेवी भी थे। उनकी विशिष्ट शैली की हिंदी ने उन्हें लोकप्रिय बनाया तो हिंदी को लोकप्रियता प्रदान करने का एक बड़ा श्रेय उन्हें जाता है। वह राजनीति में डूबे होने के बाद भी राजनीति से इतर गतिविधियों में मग्न दिख जाते थे।

पत्रकारिता से करियर शुरू करने वाले अटल बिहारी वाजपेयी राजनीति के शीर्ष पर पहुंचे तो इसीलिए कि वह देश की नब्ज पहचानते थे और यह भी जानते थे कि लोकतांत्रिक भारत का लक्ष्य क्या है और उसे कैसे हासिल किया जा सकता है? उनका जाना हमारे राष्ट्रीय जीवन में इसलिए एक बड़ा रिक्त स्थान कर गया कि अब उनकी जगह लेते हुए कोई नहीं

दिखता। उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि यही हो सकती है कि वह जिन राजनीतिक और लोकतांत्रिक आदर्शो के प्रति समर्पित रहे उन्हें आगे बढ़कर अपनाया जाए। राजनीति और राष्ट्र का हित इसी में है और यही अजात शत्रु सरीखे अटल बिहारी वाजपेयी सदैव चाहते रहे।

Date: 16-08-18

Live हिन्दुस्तान .com

किसानों की आय दोगुनी करने के लिए

राधा मोहन सिंह, केंद्रीय कृषि व किसान कल्याण मंत्री

राष्ट्रीय किसान आयोग के अध्यक्ष एमएस स्वामीनाथन ने अपनी रिपोर्ट में यह अनुशंसा की थी कि कृषि आधारित सोच के साथ-साथ किसानों के कल्याण पर भी उचित ध्यान दिया जाना चाहिए। यह किसान ही है, जो आर्थिक बदलावों में किए गए प्रयासों को महत्वपूर्ण दिशा प्रदान करता है। अत: व्यवस्था में आमूल परिवर्तन के लिए कृषि में फसल उपरांत प्रसंस्करण बाजार और इससे संबंधित व्यवस्था पर समुचित ध्यान देना होगा। नैसर्गिक संपदाओं में लगातार क्षरण और जलवायु परिवर्तन को देखते हुए आयोग ने विज्ञान आधारित प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन और सतत उत्पादन व विकास की तरफ भी ध्यान देने की बात कही थी। अब उन्होंने भी स्वीकार किया है कि पिछले चार साल में इस दिशा में काफी प्रयास हुए हैं। खासकर किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलाने और कृषि उत्पादन लागत में कमी करने के लिए। देशव्यापी 'सॉइल हेल्थ कार्ड' स्थापित करना इसी सोच का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

नाइट्रोजन उपयोग क्षमता को बढ़ाने और उपयोग की मात्रा व इससे जुड़ी लागत को घटाने के लिए नीम कोटिड यूरिया के उपयोग को अनिवार्य बना दिया गया है। इससे उत्पादकता में सुधार हुआ है और खेती की लागत घटी है। इससे इसके गलत उपयोग और गैर-कृषि क्षेत्र में इसके इस्तेमाल को रोकने में भी मदद मिली है। सतत कृषि विकास और मृदा स्वास्थ्य के लिए ऑर्गेनिक खेती को परंपरागत विकास योजना के साथ जोड़ दिया गया है, जिसमें पुआल का इन-सीटू प्रबंधन भी शामिल है। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के लागू होने से खेती के कार्यों में उचित जल प्रबंधन हो सकेगा। साथ ही, 2016 में दुनिया की सबसे बड़ी फसल बीमा योजना व मौसम आधारित फसल बीमा योजना को शुरू किया गया, जो किसानों को सभी जोखिमों से सुरक्षा प्रदान करती है।

राष्ट्रीय किसान आयोग ने किसानों की आय बढ़ाने हेतु बहुत सारे सुधारों की सिफारिश की थी, जिसको आधार मानकर सरकार ने बहुत सारी योजनाएं लागू की हैं। इसके साथ ही कृषि भूमि को पट्टे पर देने से संबंधित नया कानून लागू किया गया, जिसमें जमीन के मालिक और पट्टा लेने वाले, दोनों के हितों का ख्याल रखा गया है। बाजार सुधार लागू करने से बाजारों में पारदर्शिता बढ़ी है। देश की राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक ई-मार्केट स्कीम (ई-नाम) एक ऐसा उपाय है, जो देश भर के कृषि बाजारों को एक साथ जोड़ता है। साथ ही, 585 कृषि उत्पाद समितियों के अलावा बाकी मंडियों के बीच खुले व्यापार

पर ध्यान देकर राष्ट्रीय कृषि बाजार की स्थापना की गई है। ग्रामीण कृषि बाजार स्थापित होने से किसान सीधे तौर पर उपभोक्ताओं या खुदरा विक्रेताओं को अपने उत्पाद बेच सकेंगे।

सरकार के तमाम फैसलों में लागत से न्यूनतम 50 प्रतिशत ज्यादा समर्थन मूल्य देने का निर्णय सबसे महत्वपूर्ण है। साथ ही, इसे नया विस्तार भी दिया गया है। हरित क्रांति की शुरुआत से सरकारी खरीद केवल धान व गेहूं तक सीमित रही है। कभी-कभी कुछ और जिन्सों की खरीदारी भी की जाती रही है। पर अब दलहन और तिलहन की खरीदारी में भारी वृद्धि हुई है। हम दलहन, तिलहन के आलावा अन्य मोटे अनाजों के उत्पादन करने वाले किसानों समेत सभी तरह के किसानों को राज्य सरकारों के माध्यम से लाभ पहुंचाएंगे। अभी तक ऐसे ज्यादातर किसान उपेक्षित थे, लेकिन अब उन्हें महत्व दिया जा रहा है। ये ऐसी फसलें हैं, जो हमारी जलवायु के अनुकूल हैं और भविष्य में जलवायु परिवर्तन को सहने की क्षमता भी रखती हैं। इस सिलसिले को बढ़ाते हुए हमारा लक्ष्य 2022 तक किसानों की आय दोगुना करने का है।

खेती के अलावा पशुपालन, मछली पालन, जलजीवों के विकास को भी सरकार ने अपनी नीतियों व योजनाओं में उचित प्राथमिकता दी है। राष्ट्रीय गोकुल मिशन, जो देसी नस्लों के संरक्षण व विकास पर आधारित है, उस पर ध्यान दिया जाना समुचित कृषि विकास का अभिन्न अंग है। इससे बहुत सारे लघु व सीमांत किसान, जिसमें भूमिहीन कृषि मजदूर शामिल हैं, और जो देसी नस्लें पालते हैं, सबको उचित लाभ मिल रहा है। देश में 161 देसी नस्लों का पंजीकरण किया गया है, जिसके विकास के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद सक्रिय हो गई है। मछली उत्पादन विकास से जुड़ी परियोजनाओं से मछुआरों के जीवन में आशातीत सुधार हो रहे हैं। मछली उत्पादन क्षेत्र ने कृषि के बाकी सभी क्षेत्रों से ज्यादा वृद्धि दर हासिल की है।

ऐसे लघु किसान, जो परिवार के भरण-पोषण के लिए समुचित आय नहीं कमा सकते, उनके लिए सहयोगी कृषि को बढ़ावा दिया जा रहा है। सरकार की कृषि आधारित सहयोगी योजनाएं, जिनमें मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, कृषि वानिकी और बांस उत्पादन आदि शामिल हैं। इन योजनाओं से कृषि में अतिरिक्त रोजगार व आमदनी पैदा करने में सहायता मिलेगी। राष्ट्रीय किसान आयोग द्वारा की गई उत्पादकता बढ़ाने व कुपोषण दूर करने संबंधी सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा पिछले चार साल में ही फसलों की कुल 795 उन्नत किस्में विकसित की गई हैं। इनमें से 495 किस्में जलवायु के विभिन्न दबावोंको सहने में सक्षम हैं। इनका लाभ किसान उठा रहे हैं। सीमांत व लघु किसान परिवारों की आमदनी बढ़ाने की दिशा में पहल करते हुए कुल 45 एकीकृत कृषि प्रणाली मॉडल विकसित किए गए, जिनसे मिट्टी की सेहत और जल उपयोग की प्रभावशीलता को बढ़ाया जा रहा है, साथ ही कृषि की जैव विविधता का संरक्षण किया जा रहा है। इन मॉडलों को गांव-गांव पहुंचाने के लिए प्रत्येक कृषि विज्ञान केंद्र में इस मॉडल को स्थापित किया जा रहा है। ये सभी योजनाएं पूरी तरह से लागू हो गईं, तो कोई संदेह नहीं कि जब देश अपनी आजादी की 75वीं सालगिरह मना रहा होगा, तब हमारे किसानों की आमदनी दोगुनी हो चुकी होगी।

Date: 15-08-18

जनसत्ता

बाढ़ के रास्ते

संपादकीय

इस साल अच्छे मानसून ने एक ओर जहां खेती-किसानी के लिए काफी उम्मीदें जगाईं, वहीं बारिश के चलते देश के अलग-अलग हिस्सों से व्यापक नुकसान की जैसी खबरें आ रही हैं, वे चिंता पैदा करती हैं। देश के कई राज्यों में भारी बारिश के कारण आई बाढ़ ने जनजीवन को पूरी तरह ठप कर दिया और बड़े पैमाने पर जान-माल की हानि हुई है। दरअसल, इस साल की बरसात ने एक प्राकृतिक आपदा का रूप ले लिया है। अब तक उत्तर प्रदेश, बिहार और यहां तक कि केरल में भी बाढ़ से कई लोग जान गंवा चुके हैं। देश भर से अब तक कम से कम पौने आठ सौ लोगों के मारे जाने की खबरें आ चुकी हैं। लेकिन मैदानी इलाकों की बरसात के मुकाबले पहाड़ी क्षेत्रों में इससे उपजे खतरे की प्रकृति और स्वरूप अलग होता है और इससे निपटना भी चुनौतियों से भरा हुआ। खासतौर पर अचानक बादलों के फटने की स्थिति में लोग चाह कर भी बहुत कुछ नहीं कर पाते। इन्हीं वजहों से हिमाचल प्रदेश में इस साल की बारिश में अब तक सोलह लोगों के मारे जाने की खबरें आ चुकी हैं। भूस्खलन और जमीन धंसने की घटनाओं से राज्य के अधिकांश छोटे-बड़े सड़क मार्ग बंद हो गए हैं। हालात के मद्देनजर फिलहाल सभी स्कूलों को भी बंद रखने का फैसला किया गया है।

आमतौर पर पहाड़ी इलाकों की बरसात के बारे में माना जाता है कि तीखी ढलान होने की वजह पानी का निकास आसानी से हो जाता है, इसलिए बाढ़ की आशंका कम पैदा होती है। लेकिन सच यह है कि पिछले कुछ दशकों के दौरान उन क्षेत्रों में अनियोजित विकास ने शहरों को संकरा और घनी आबादी वाला बना दिया है। नदियों के पानी के प्रवाह पर भी इसका असर पड़ा है और यही वजह है कि ज्यादा बारिश में नदियां उफन जाती हैं और रिहाइशी इलाकों को भी तबाह करती हैं। इसके अलावा, अंधाधुंध तरीके से पेड़ों की कटाई ने पहाड़ों की मजबूती पर बुरा असर डाला है और औसत से ज्यादा बारिश होने पर भूस्खलन जैसी घटनाएं लगातार देखने में आ रही हैं। हिमाचल प्रदेश का आकर्षण और उसकी अर्थव्यवस्था का आधार पर्यटन है और हर वक्त हजारों पर्यटक वहां मौजूद होते हैं। लेकिन इस साल जिस तरह बाढ़ और पहाड़ों में भूस्खलन की आशंका खड़ी हो गई है, उसे देखते हुए पर्यटकों से हिमाचल की यात्रा स्थगित करने की सलाह जारी करनी पड़ी है।

पहाड़ी इलाकों में ज्यादा बड़ी तबाही बादल फटने से देखी गई है। बाढ़ नदियों से शुरू होकर उफनने के बाद मैदानी इलाकों में फैलती है और इस तरह उसके रास्ते और इलाके के बारे में अंदाजा लगाया जा सकता है। लेकिन बादल फटने की जगह निश्चित नहीं होती। अगर अचानक भारी बारिश के पानी की निर्बाध निकासी की व्यवस्था की जाए और वृक्षारोपण को तेजी से बढ़ावा दिया जाए तो बारिश के मौसम में बाढ़, भूस्खलन और बादल फटने जैसी आपदाओं का सामना करने में थोड़ी आसानी हो सकती है। लेकिन विडंबना यह है कि बरसात से उपजी आफत के उदाहरण सामने होने के बावजूद सरकारों की नींद तब तक नहीं खुलती है, जब तक इस तरह का नया संकट सामने खड़ा न हो जाए। सरकारों के इसी रवैए की वजह से जान-माल के नुकसान का दायरा व्यापक हो जाता है। मौसम का अपना एक नियत चक्र होता

है और आपदाओं को रोका नहीं जा सकता। लेकिन अचानक आई आपदा से निपटने के पूर्व इंतजाम जरूर किए जा सकते हैं, ताकि होने वाले नुकसान को कम किया जा सके।

Date: 15-08-18

एक साथ चुनाव

संपादकीय

पिछले कुछ समय से लोकसभा और विधानसभा चुनाव एक साथ कराने को लेकर चर्चा जारी है। नीति आयोग, चुनाव आयोग और विधि आयोग जैसी संस्थाओं और राजनीतिक दलों में इसे लेकर गहन विचार चल रहा है। विधि आयोग ने राजनीतिक दलों से इस पर विमर्श किया है, उनके विचार जाने हैं और सुझाव भी मांगे हैं। नीति आयोग ने तो पहले ही कह दिया है कि 2024 में देश में लोकसभा और विधानसभा चुनाव एक साथ कराए जा सकते हैं। हालांकि राजनीतिक दलों में इस पर अभी मतैक्य नहीं है। कुछ दलों को इसमें लाभ, तो कुछ को नुकसान ज्यादा नजर आ रहे हैं। लेकिन साथ चुनाव कराने के पक्ष में जो तर्क दिए जा रहे हैं, उनसे भी एक सीमा तक असहमति नहीं जताई जा सकती। इसमें दो राय नहीं कि इसके कुछ नुकसान होंगे। लेकिन यह भी देखा जाना चाहिए कि बदलते वक्त के साथ हमारी जरूरतें क्या हैं और हमारा सर्वाधिक हित किसमें है। यह जरूर सुनिश्चित होना चाहिए कि लोकतंत्र के इस सबसे बड़े आयोजन की पवित्रता पर कोई आंच न आए।

ऐसा नहीं है कि भारत में लोकसभा और विधानसभा चुनाव साथ कराने की बात पहली बार हो रही है। इससे पहले 1957, 1962 और 1967 में देश में लोकसभा चुनाव के साथ ही विधानसभाओं के भी चुनाव हुए थे। हालांकि इसके लिए कोई संवैधानिक बाध्यता नहीं थी। लेकिन 1967 के बाद से यह सिलसिला पटरी से उतर आ गया। फिर 1983 में चुनाव आयोग की सालाना रिपोर्ट में इसका जिक्र आया, जिसमें दोनों चुनाव साथ कराने का सुझाव था। तब से ऐसे अनेक मौके आए जब लोकसभा और विधानसभा चुनाव साथ कराने की चर्चा उठती रही। संसद की स्थायी समिति की रिपोर्ट में इसका जिक्र हुआ। एक साथ चुनाव कराने के पीछे जो तर्क तब थे, कमोबेश वही अब भी हैं। आज भी कोई संवैधानिक बाध्यता नहीं है। लेकिन अब यह महसूस किया जा रहा है कि चुनावों का काम जल्दी और आसानी से संपन्न हो जाए तो उससे समय, पैसे और संसाधन को काफी बचाया जा सकता है। इसलिए इसे एक सकारात्मक कदम के रूप में लिया जाना चाहिए।

लेकिन भारत जैसे देश में चुनाव जिस तरह का विशालकाय आयोजन होता है, उसे देखते हुए कई व्यावहारिक दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। चुनाव आयोग ने सितंबर, 2018 के बाद एक साथ चुनाव कराने के लिए कमर कसने की बात कही थी। लेकिन इसके लिए बारह लाख नई ईवीएम मशीनों और वीवीपीएटी की व्यवस्था की बात उठी। इससे सरकारी खजाने पर 4500 करोड़ का बोझ पड़ता। नीति आयोग का कहना है कि 2009 के लोकसभा चुनाव पर 1195 करोड़ रुपए खर्च हुए थे और 2014 के चुनाव में 3900 करोड़। ऐसे में अगर लोकसभा और विधानसभा के चुनाव एक साथ हों तो ये 4500 करोड़ रुपए बच सकते हैं और इससे ईवीएम मशीनों और वीवीपीएटी के खर्चे का इंतजाम हो सकता है। इसके अलावा जितने बड़े पैमाने पर सरकारी मशीनरी को इस आयोजन में लगाना पड़ता है, वह भी एक गंभीर

समस्या है। इससे सरकारी कामकाज में लंबे समय तक व्यवधान बना रहता है। चुनाव से पूर्व राज्यों में आचार संहिता की वजह से कई जनकल्याण से जुड़ी योजनाओं के क्रियान्वयन में देरी होती है। इसका असर समूचे विकास पर पड़ता है। जैसे 2016-17 में महाराष्ट्र में चुनावों की वजह से 365 में से 307 दिन आचार संहिता लागू रही थी। ऐसे में सवाल उठता है कि क्या ऐसा रास्ता नहीं निकाला जाना चाहिए कि पूरे देश में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों का आयोजन साथ हो और विकास कार्यों पर भी असर न पड़े।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 15-08-18

सालती है बढ़ती गैर-बराबरी

कृष्ण प्रताप सिंह

आज जब हम ''भारत के लोग' स्वतंत्रता दिवस मना रहे हैं, बाबा नागार्जुन की एक प्रसिद्ध कविता का वह सवाल पहले से ज्यादा प्रासंगिक हो गया है, जिसमें पहले वे पूछते हैं : ''किसकी है जनवरी, किसका अगस्त है?' बाबा अपने सवाल को कौन त्रस्त, कौन पस्त और कौन मस्त तक भी ले जाते हैं, तो लगता है कि उन्हें आज की तारीख में हमारे सामने उपस्थित विकट हालात का पहले से इल्म था। इन हालात की विडम्बना देखिए : एक ओर तो अब हमारे नेता देश को समता, स्वतंत्रता और न्याय पर आधारित संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने का 26 नवम्बर, 1949 को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित संकल्प को संविधान की पोथियों में भी चैन से नहीं रहने देना चाहते; और दूसरी ओर गैर-बराबरी का भस्मासुर न सिर्फ हमारी बल्कि दुनिया भर की जनतांत्रिक शक्तियों के सिर पर अपना हाथ रखकर उन्हें धमकाने पर आमादा है कि लोकतंत्र की अपनी परिकल्पनाओं को लेकर किसी मुगालते में न रहें।

अपने देश की बात करें तो यहां 2017 में उत्पन्न कुल संपत्ति का 73 प्रतिशत हिस्सा ही एक प्रतिशत सबसे अमीरों के नाम रहा है। यह विश्वव्यापी औसत 82 से कम है, लेकिन देश की जिस अर्थव्यवस्था के अभी हाल तक ''दुनिया की सबसे तेज बढ़ती अर्थव्यवस्था' होने का दावा किया जाता रहा है, उसमें अमीरों द्वारा सब-कुछ अपने कब्जे में करते जाने की रफ्तार इतनी तेज हो गई है कि 2016 में 58 प्रतिशत संपत्ति के स्वामी एक प्रतिशत अमीरों के कब्जे में अब 73 प्रतिशत संपत्ति है यानी 2017 में उनकी कुल संपत्ति में 20.7 लाख करोड़ की बढ़ोतरी हुई, जो उसके पिछले साल 4.89 लाख करोड़ रु पये ही थी। चूंकि हमने बेरोकटोक भूमंडलीकरण को सिर-माथे लेकर अनेकानेक विदेशी कंपनियों को देश में कमाया मुनाफा देश से बाहर ले जाने की छूट भी दे रखी है, इसलिए विदेशी अरबपतियों को खरबपति बनाने में भी हमारा कुछ कम योगदान नहीं है। ऐसे में यह समझने के लिए अर्थशास्त्र की बारीकियों में बहुत गहरे पैठने की जरूरत नहीं कि यह अमीरी ज्यादा से ज्यादा लोगों को आर्थिक विकास का फायदा देकर यानी ''सबका साथ, सबका विकास' के नारे को सदाशयता से जमीन पर उतारकर संभव ही नहीं थी।

अमीरी का जाया यह असुर उनके सारे के सारे मूल्यों को तहस-नहस करने का मंसूबा लिए उन्मत्त होकर आगे बढ़ा आ रहा है, और आरजू या मिनती कुछ भी सुनने के मूड में नहीं है। अभी जब हम अपना पिछला गणतंत्र दिवस मनाने वाले थे, गरीबी उन्मूलन के लिए काम करने का दावा करने वाले ऑक्सफेम इंटरनेशनल ने एक सर्वेक्षण में बताया गया था कि आर्थिक विषमता की, जो सभी तरह की स्वतंत्रताओं और इंसाफों की साझा दुश्मन है, दुनिया भर में ऐसी पौ-बारह हो गई है कि पिछले साल बढ़ी 762 अरब डॉलर की संपत्ति का 82 फीसदी हिस्सा एक प्रतिशत धनकुबेरों के कब्जे में चला गया है, अधिसंख्य आबादी को जस की तस बदहाल रखते हुए। निश्चित ही यह अर्थ नीति की नाकामी है क्योंकि इन कुबेरों द्वारा संपत्ति में ढाल ली गई पूंजी अंतत: अर्थ तंत्र से बाहर होकर अनुत्पादक हो जानी है। उसे इस तय से फर्क नहीं पड़ना कि अरबों गरीब खतरनाक परिस्थितियों में भी ज्यादा देर तक काम करने और अधिकारों के बिना गुजर-बसर करने को मजबूर है। बड़े-बड़े परिवर्तनों के दावे करके आई नरेन्द्र मोदी सरकार को भी अपने चार सालों में इस अनर्थ नीति को बदलना गंवारा नहीं है।

यह सरकार इस सीधे सवाल का सामना भी नहीं करती कि किसी एक व्यक्ति के अमीर बनाने के लिए कितनी बड़ी जनसंख्या को गरीबी के हवाले करना पड़ता है, और क्यों हमें ''हृदयहीन' पूंजी को ब्रह्म और ''श्रम के शोषक' मुनाफे को मोक्ष मानकर ''सहृदय' मनुष्य को संसाधन की तरह संचालित करने वाली अर्थव्यवस्था के लिए अनंतकाल तक अपनी सारी लोकतांत्रिक-सामाजिक नैतिकताओं, गुणों और मूल्यों की बलि देते रहना चाहिए? एक ओर सवालों के जवाब नहीं आ रहे और दूसरी ओर पूछने वाले हकलाने लग गए हैं, तो साफ है कि हमारे लोकतंत्र में जनतांत्रिक विचारों की कमी खतरनाक स्तर तक जा पहुंची है। यह कमी वक्त में कोढ़ में खाज से कम नहीं है कि गरीबों को और गरीब और अमीरों को और अमीर बनाने वाली आर्थिक नीति के करिश्मे अब किसी एक देश तक सीमित नहीं हैं। एक प्रतिशत लोगों की अमीरी की यह उड़ान हमें कितनी महंगी पड़ने वाली है, जानना हो तो बताइए कि गरीबों के लिए इस गैर-बराबरी से उबरने की कल्पना भी दुष्कर हो जाएगी तो वे क्या करेंगे?